॥ धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है ॥

वर्ष चौथा
अंक सातवां

: संपादक :
रामजी माणेकचंद दोशी
वकील

कार्तिक
२४७५

❀ भेदविज्ञानी की दशा ❀

जो चैतन्य का लक्षण नहीं है—ऐसी समस्त बंधभाव की रुचि मुझसे भिन्न है–ऐसे बंधभाव से भिन्न स्वभाव का निर्णय करने पर चैतन्य को उस बंधभाव की रुचि का आधार नहीं रहता, मात्र आत्मा का ही आधार रहता है। ऐसी स्वाश्रयता की स्वीकृति में चैतन्य का अनन्तवीर्य आ गया है। अपनी शक्ति द्वारा जिसने बंध रहित स्वभाव का निर्णय किया है, उसे स्वभाव की उमंग और प्रमोद होता है कि अहो! यह चैतन्यस्वभाव स्वतः भवरहित है, उसका आश्रय किया, इससे अब भव का अंत निकट आ गया और मुक्तदशा की नौबत बजी है। इसप्रकार अपने निर्णय से जो निःशंक हो जाता है, उसे चैतन्य प्रदेशों में उल्लास होता है और अल्पकाल में ही मुक्तदशा होती है।

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

शाश्वत सुख का मार्ग ४३ दर्शक मासिक पत्र

एक अंक
चार आना

आ त्म ध र्म का र्या ल य — मो टा आं क ड़ि या — का ठि या वा ड़

बम्बई में श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल की ओर से— उत्साहपूर्वक मनाये गये धार्मिक दिवस तथा दशलक्षण पर्व!

(श्रावण वदी १२ से भादव वदी १ तक का संक्षिप्त विवरण)

स्थान— हीराबाग हॉल (सी.पी. टैंक रोड)

श्रावण वदी १२ सुबह— श्री भूलेश्वर दिगम्बर जैन मन्दिर से भगवान महावीर स्वामी की रथयात्रा का गाजे-बाजे के साथ निकली थी। मुमुक्षु भाई-बहिनों का उत्साह अत्यन्त भक्तिभाव से पूर्ण था। बहिनें तो निश्चित समय से पूर्व ही श्री भूलेश्वर मन्दिर में एकत्रित हो गई थीं और भगवान के जन्मकल्याणक के गीतों से मन्दिर को गुंजा दिया था। रथयात्रा के जलूस में सबसे आगे नेशनल हिन्दु बेन्ड सुन्दर एवं मधुर वाद्यों को बजा रहा था, मानों भगवान के पधारने की घोषणा कर रहा हो। उसके पीछे बालक ध्वजाएँ फहराते हुए चल रहे थे, मानों वे कह रहे हों कि जो परमात्मा की पहिचान करते हैं, उनका विजयध्वज इस जगत में फहराता है। उनके पीछे मुमुक्षु भाई रतवन गाते हुए चल रहे थे, जिसमें श्री भूलेश्वर दि० जैन मन्दिर के ट्रस्टियों की ओर से पधारे हुए सेठ श्री सुन्दरलालजी, सेठ पन्नालालजी, सेठ लक्ष्मीचन्दजी, इन्दौरवाले, सेठ महेन्द्रकुमारजी, सेठ अमुलखजी तथा सेठ मानमलजी और गुलालवाड़ी जिनमन्दिर के ट्रस्टी सेठ श्री चन्दुलाल कस्तूरचंदजी इत्यादि विशेष उल्लेखनीय हैं। उसके पीछे भगवान की पालकी थी और पीछे बहिनें हर्षपूर्वक मंगल गीत गाते हुए चल रही थीं। जलूस १ घण्टे में हीराबाग हॉल पहुँचा। प्रसंगानुसार हॉल को सुन्दर ढंग से सज्जित किया गया था। मंच के ऊपर सुन्दर वेदी बनाई गई थी, उस पर सिंहासन के ऊपर श्री जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा को विराजमान करके अभिषेक और पूजन की गई थी। उस समय लगभग पाँच सौ भाई-बहिन उपस्थित थे।

दोपहर— श्री समयसारजी की १४ वीं गाथा की वचनिका हुई थी। श्रावण वदी १२ से भादव सुदी ४ तक निम्नानुसार कार्यक्रम रखा गया था:—

सुबह— ७.०० से ८.०० श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा, ८.०० से ९.०० श्री समयसारजी गाथा १४ के प्रवचनों में से वचनिका, ३.०० से ४.०० श्री जिनेन्द्र भगवान की भक्ति।

रात्रि— ६.०० से ७.०० से श्री देव-गुरु-शास्त्र की आरती।

७.०० से ८.०० प्रतिक्रमण।

८.०० से ९.०० भक्ति-भावना।

श्रावण वदी १२ रात्रि—भिन्न-भिन्न भावनाओं में एक बालिका ने अप्सरा रूप धारण करके उल्लासपूर्वक भक्ति की थी। अन्य बालिकाओं ने लाख-लाख दीपों से भगवान की आरती उतारी थी।

भादव सुदी २—भाइयों ने प्रतिक्रमण का संवाद किया था।

भादव सुदी ५—भाइयों ने गृहीत मिथ्यात्व का संवाद तथा बहिनों ने अस्तित्व गुण तथा तप के विषय में संवाद किया था।

दशलक्षण पर्व का पहला दिन—पाँच-छह सौ भाई-बहिनों की उपस्थिति थी। सुबह वचनिका के उपरांत श्री समयसारजी शास्त्र की ज्ञान-पूजा की गई थी। आरती के घी पर ५ बोलियाँ बोली गई थीं जिसमें अच्छा उत्साह था और उसमें अच्छी रकम मन्दिरजी को प्राप्त हुई।

प्रतिदिन के कार्यक्रम के उपरांत दोपहर १.०० से २.०० दो दिन श्री समयसारजी (हरिगीत) एकदिन श्री प्रवचनसारजी (हरिगीत) तथा एकदिन श्री आत्मसिद्धि की स्वाध्याय की गई थी।

भाद्रपद शुक्ला ५ से १४ तक—सुबह की वचनिका में श्री पद्मनन्दि पंचविंशतिका में से उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य तथा ब्रह्मचर्य इन दश धर्मों में प्रतिदिन एक-एक धर्म पर परमपूज्य गुरुदेव के किये गये प्रवचन जो "आत्मधर्म के अगले अंकों में प्रकाशित होंगे।" उनकी वचनिका होती थी।

धूप दशमी—हीराबाग हॉल में दर्शनार्थ आये हुए पाँच सौ से अधिक दिगम्बर जैन भाई और बहिनों की भीड़ थी।

अनन्त चतुर्दशी के सुबह—श्री पद्मनन्दि पंचविंशतिका में से उत्तम ब्रह्मचर्य के ऊपर प्रवचन हुआ था।

मध्याह्न—श्री तत्वार्थसूत्र के पहले अध्याय के तीसरे परिशिष्ट में से "जिज्ञासुओं को धर्म किसप्रकार करना चाहिये" का प्रवचन।

रात्रि—सर्वसामान्य प्रतिक्रमण पूर्ण, और उसके पश्चात् भावना।

क्षमावाणी दिन—सुबह पूजन के समय अधिकांश भाई-बहिन उपस्थित थे। आज उत्सव का अन्तिम दिवस होने के कारण सभी को अत्यन्त उत्साह था। पूजन के पश्चात् पूज्य गुरुदेव द्वारा की गई प्रवचनसार गुजराती की महिमा के ऊपर थोड़ा विवेचन करके ज्ञान पूजा की गई थी।

पश्चात् गाजे-बाजे के साथ रथयात्रा निकालकर श्री जिन भगवान की प्रतिमा को भूलेश्वर मन्दिर में पधराया था, वहाँ अत्यन्त उत्साहपूर्वक भक्ति की गई थी और श्री जिनेन्द्र भगवान का कलशाभिषेक करके पूजन की थी।

शाम को छह बजे मण्डल के भाई-बहिन भूलेश्वर मन्दिर में गये थे और वहाँ के भाइयों की ओर से मनाये गये उत्सव में भाग लिया था। क्षमावाणी के पश्चात् उत्सव की पूर्णाहुति हुई थी।

पूजा-विधान—उत्सव के २० दिन तक भिन्न-भिन्न भाई-बहिनों की ओर से पूजा विधान कराये गये थे।

पूजा-भक्ति आदि में अपना उत्साह देखकर अधिकांश दिगम्बर भाई जिनका ऐसा अभिप्राय था कि यह लोग पूजा-भक्ति आदि को नहीं मानते हैं, उन्हें यह प्रसंग मध्यस्थरूप से विचार करने का निमित्त बना है।

प्रभावना—श्री खीमचंद जेठालाल सेठ तथा अनेक धर्मप्रेमी भाईयों की ओर से एक दिन ''अपूर्व अवसर पर प्रवचन'' की प्रभावना की गई थी।

पारितोषिक—गायन-संवाद-रास में भाग लेने वाले बालक-बालिकाओं ने बहुत सुन्दर कार्य किया था। उसके उपलक्ष में उन्हें सभापति के हाथ से पुस्तकें तथा नकद रुपये पारितोषिक स्वरूप दिये गये थे। इसके लिये रुपये ५१/- सेठ खीमचंद जेठालाल की ओर से, 'मुक्ति का मार्ग' मोदी नागरदास देवचंद की ओर से तथा 'द्रव्यसंग्रह' भाई अनूपचंद छगनलाल की ओर से दी गई थीं।

पुस्तकें बेची गईं—उत्सव के समय सोनगढ़ से पुस्तकें मंगाकर बेची गई थीं और उनके ऊपर १२ प्रतिशत कमीशन दिया गया था। यह कमीशन पूज्य गुरुदेव की जन्म-जयंती के प्रसंग पर आई हुई रकम में से दिया गया था।

जिनमंदिर के लिये फंड—आत्मधर्म गुज० में अंक ५७ की विज्ञप्ति के अनुसार रुपया ७३४४९.०० का फंड हुआ, उसके पश्चात् तथा उत्सव के प्रसंग पर एकत्रित रकम सहित कुल रुपया एक लाख के लगभग हुआ है। सेठ श्री महेन्द्रकुमारजी जौहरी की ओर से रु० १००१/-एवं गुलाववाड़ी दिगम्बर जैन मन्दिर के ट्रस्टी सेठ चंदुलाल कस्तूरचंद की ओर से रुपये १००१/- लिखाया गया, फंड अभी चालू है।

घास के लिये चंदा—सौराष्ट्र (काठियावाड) में इस वर्ष अकाल जैसी परिस्थिति हो रही

है। इस कारण वहाँ के ढोरों को घास के लिये चंदा करने को सोनगढ़ के कुछ भाई पधारे थे। उन्हें हीराबाग में घास के लिये अपील करने पर भाई-बहिनों की ओर से कुल मिलाकर ७००/- से अधिक चंदा हो गया था।

सामान्य—(१) दिगम्बर जैन भाई-बहिन रात्रि को पधारते थे और शास्त्र वचनिका तथा भक्ति आदि में उत्साहपूर्वक भाग लेते थे। (२) उत्सव के दिनों में चालू कार्यक्रम के अनुसार भी भूलेश्वर मन्दिर और कालवादेवी मन्दिर में अधिकांश भाई-बहिन प्रतिदिन दर्शनार्थ जाते थे। (३) एक दिन चौपाटी पर सेठ माणिकलाल पानाचंद के मन्दिर में भाई-बहिनों ने भक्ति की थी और फिर वहाँ से सेठ श्री पूनमचंद घासीमल के मन्दिर में भी दर्शनार्थ गये थे।

आभार प्रदर्शन—(१) श्री जैन प्रतिमा जी एवं अन्य सामग्री देने के बदले श्री भूलेश्वर दि. जैन मन्दिर के ट्रस्टियों का (२) हीराबाग हाल २० दिन के लिये देने के बदले सेठ श्री माणिकलाल पानाचंदजी का (३) कालबादेवी रोड के ऊपर नये दि. जैन मन्दिर में प्रतिदिन होने वाले प्रवचन की सुविधा देने के बदले सेठ श्री पूनमचंद घासीमल और उनके सुपुत्रों का आभार प्रदर्शित किया गया था। श्री जिन मन्दिर के लिये जिन-जिन भाई-बहिनों ने रकमें प्रदान कीं, उसके लिये उनका भी आभार प्रदर्शित किया गया था। सेक्रेटरी भाई श्री हरगोविन्दजी, जिन्होंने इस कार्य में अत्यंत उत्साहपूर्वक भाग लिया था, उनका आभार यहाँ उल्लेखनीय है। उपरोक्त समस्त कार्यों की अपेक्षा अधिक महत्व का कार्य तो सत्शास्त्रों की वचनिका का था, जो कि भाई श्री हिमतलाल छोटालाल शाह तथा भाईश्री अमृतलाल नरशीभाई सेठ ने अपूर्व आनन्द और उत्साह के साथ निस्पृह भाव से किया था। उनकी सरस एवं सरल भाषा में समझाने की सुन्दर शैली वैसे ही प्रश्नों का समाधान करने की योग्यता के कारण सर्व श्रोताओं को अत्यंत आनन्द प्राप्त हुआ था।

— श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल बम्बई—

मांगलिक सुप्रभात

[कार्तिक शुक्ला एकम के दिन परमपूज्य शांतिदायक श्री सद्गुरुदेव का व्याख्यान]

[१] आत्मा की जीवनशक्ति

आत्मा के स्वभाव से जो पूर्ण दशा प्रगट होती है, वही मंगलप्रभात है, वही नूतनवर्ष है। जिसके आत्मा में सुप्रभात प्रगट हुआ, उसके जन्म-मरण का अन्त होकर सिद्धदशा प्रगट होती है। आत्मा, शरीर से अथवा पैसा आदि से जीवित नहीं रहता, उनसे तो आत्मा भिन्न है। आत्मा का जीवन कैसा होता है, यह आचार्यदेव बताते हैं।

आत्मा में जीवनशक्ति है। अनादि-अनन्त आत्मा ज्ञान-दर्शनशक्ति को धारण किये रहता है; ऐसी आत्मा में जीवनशक्ति है, और इसी शक्ति से आत्मा सदा जीवित रहता है। जैसे आत्मा में ''ज्ञान'' शक्ति है, वैसे ही एक ''जीवन'' नाम की शक्ति भी है। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, सुख, आनंद, पुरुषार्थ, शांति और जीवन हैं-ये समस्त गुण ही आत्मा का कुटुम्ब है और वे हमेशा आत्मा के साथ ही रहते हैं। अपने जो अनंतगुण हैं, वही अपना कुटुम्ब है, इसकी जिसको खबर नहीं है, वह जीव बाह्य में कुटुम्ब, शरीर और पैसा आदि को हमेशा स्थिर रखने की भावना करता है। किन्तु वह अज्ञान है और दुःख का कारण है। मैं अपनी जीवनशक्ति से ही सदा जीवित रहता हूँ, ज्ञान-आनंद आदि अनंतगुणरूपी मेरा कुटुम्ब है, मेरे संपूर्ण गुणों के साथ मेरा परिपूर्ण निर्मल पवित्र जीवन स्थिर रहे—यही आत्मार्थी जीव भावना करता है। यही महान मांगलिक है—ऐसा ज्ञानीजन कहते हैं।

श्री समयसार जी शास्त्र में आत्मा की ४७ शक्तियों का वर्णन किया है। उनमें सबसे पहले आचार्यदेव ने आत्मा की जीवत्वशक्ति का वर्णन किया है। जीवत्वशक्ति अर्थात् जीने की शक्ति, जीवनशक्ति। आत्मा में जीवनशक्ति है, उससे वह सदा जीवित ही है। इस शरीर से अथवा इन्द्रियों से आत्मा जीवित नहीं रहता किन्तु ज्ञान और दर्शनरूप चैतन्य प्राणों से ही आत्मा जीता है। आत्मद्रव्य को कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भाव का धारण जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है—ऐसी जीवत्वशक्ति आत्मा में उछलती है। आत्मा में चैतन्य प्राण हैं, और उनसे आत्मा सदा जीता है, और यदि चैतन्यशक्ति का नाश हो तो आत्मा मरे परन्तु चैतन्यशक्ति तो सदा-त्रिकाल है, इससे आत्मा सदा जीवित रहता है। ऐसी चैतन्यस्वरूप जीवत्वशक्ति आत्मा में सदा विद्यमान है।

आत्मा का भाव चैतन्यमात्र है, और यह शरीर तो जड़-अचेतन है। चैतन्यस्वरूपी आत्मा शरीर के आधार पर नहीं जीता और न शरीर के प्राणों को आत्मा धारण करता है। उसीप्रकार पुण्य के आधार से आत्मा जीवित नहीं रहता और न पुण्य को आत्मा धारण करता है, शुद्धज्ञान-दर्शनरूप चैतन्य प्राणों को आत्मा धारण करता है, और इन्हीं से आत्मा जीता है। आत्मा में जीवत्व नामक विशिष्ट शक्ति है, त्रिकाल और त्रिलोक में आत्मा चैतन्य प्राणों को धारण करके ही जीवित है; शरीर ने आत्मा को कभी धारण किया ही नहीं है, और आत्मा के स्वभाव ने भी कभी विकार को धारण नहीं किया। शरीर और विकार से रहित ऐसी चैतन्यशक्ति को धारण करके जीव का स्थिर रहना, यही सुप्रभात है। अपना जीवन चैतन्यशक्तिरूप है, उसको पहिचानना और उसी में स्थिर रहना, किन्तु विकार में स्थिर न होना, यही सुप्रभात है। ऐसे सुप्रभात की यहाँ भावना है।

[२] जीव का कुटुम्ब

जीव का कुटुम्ब जीव से पृथक् नहीं होता और कभी जीव से भिन्न हो भी नहीं सकता। ज्ञान-आनंद इत्यादि अनतंगुण ही जीव का कुटुंब है। आत्मा में ज्ञान, सुख आदि अनंत शक्तियाँ हैं, वे सब की सब एक साथ मिलकर रहती हैं, एक शक्ति दूसरी शक्ति के बिना नहीं हो सकती। इसप्रकार आत्मा का गुणरूपी कुटुंब एकत्रित ही है। ऐसा अनंत गुणस्वरूपी मेरा कुटुम्ब सदा पवित्ररूप श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र में स्थिर रहे—ऐसी धर्मी जीव की भावना है। अनंतगुण से परिपूर्ण अपने आत्मस्वभाव का ज्ञान, और उसमें ही स्थिरता यही मुक्ति की क्रिया है, इस क्रिया से ही आत्मा के अनंत-चतुष्टय प्रगट होता है, और यही आत्मा का सुप्रभात है।

[३] ज्ञान और क्रिया

'मुझमें जीवत्वशक्ति है, मैं किसी पर के आधार से जीवित नहीं रहता, किन्तु अपने त्रिकाल चैतन्यभावप्राणों से ही स्थिर हूँ'' इसप्रकार अपने त्रिकाल अस्तित्वभाव की पहिचान करना सच्चा ज्ञान है और उस ज्ञान से जाने गये स्वभाव के आश्रय से स्थिर होने पर अशुद्धता का नाश होना, यही सच्ची क्रिया है। यह ज्ञान और क्रिया ही मोक्ष का कारण है। इसके अतिरिक्त कोई ज्ञान अथवा अन्य कोई क्रिया मोक्ष का कारण नहीं है। शास्त्रों का ज्ञान, शरीर आदि की क्रिया अथवा पुण्य की क्रिया, यह कोई धर्म नहीं है और न इनसे संसार का अंत आता है। अपने पूर्ण शुद्धस्वभाव की पहिचान, सो ज्ञान है और स्वभाव के आश्रित अशुद्धता का नाश, वह क्रिया है। इस ज्ञान-क्रिया के द्वारा संसार रात्रि के अंधकार का नाश होकर अनंतचतुष्टय के प्रकाश की उत्पत्ति होती है।

[४] नाशरहित उत्पाद

आत्मा में जो परिपूर्ण ज्ञान-दर्शन-सुख और आत्म-बल प्रगट होता है, उसे स्वचतुष्टय कहते हैं। आत्मा में ऐसे स्वचतुष्टय का जो उत्पाद हुआ है, वह नाश रहित है, अर्थात् आत्मा में ज्ञान और सुखमय जो सुप्रभात प्रगट हुआ है, उसका कभी नाश होनेवाला नहीं है। यह सदा ऐसा का ऐसा ही स्थिर रहेगा। आत्मा का शुद्ध चैतन्यस्वभाव त्रिकाल है, उसके आश्रय से जो पूर्ण शुद्धदशा प्रगट हुई, उसका कभी नाश नहीं होता; इसलिये आत्मा की सच्ची पहिचान और स्थिरता के पुरुषार्थ द्वारा आत्मा में जो अनंत चतुष्टयरूप दशा प्रगट हुई, वह स्वभावरूप सुप्रभात है। वह सुप्रभात दशा प्रगट हुई, वह स्वभावरूप सुप्रभात है। वह सुप्रभात प्रगट होने के पश्चात् आत्मा के जन्म-मरण नहीं होता, उसके स्वकाल की पूर्णता हुई, आत्मा में यथार्थ प्रभात उदित हुआ-आत्मा का प्रातःकाल हुआ। परमार्थ से इसका ही नाम नूतनवर्ष है। इस नूतनवर्ष के मांगलिक सुप्रभात का श्री अमृतचंद्राचार्यदेव वर्णन करते हैं:—

चित्पिंडचंडिमविलासि विकासहासः
शुद्धप्रकाशभरनिर्भर सुप्रभात,
आनंदसुस्थित सदास्खलितैकरूप-
स्तस्यैवचायमुदयत्यचलार्चिरात्मा। [समयसार, कलश २६८]

सुप्रभात के समान यह आत्मा उदय को प्राप्त होता है। स्वभाव के आश्रय से आत्मा में स्वचतुष्टय का प्रकाश हुआ, वही सुप्रभात है। अपना स्वभाव त्रिकाल शुद्ध है, उसे पहिचानकर उसका (स्वभाव का) आश्रय करने पर सर्व मलीनता नाश होती है, और चार घातिया कर्म भी नष्ट होते हैं। जिसने स्वभाव के आश्रय से पूर्णदशा प्रगट की है, उसका संपूर्ण आत्मा ही उदय को प्राप्त हुआ है—ऐसा यहाँ कहा है।

[५] ज्ञान और क्रिया का स्वरूप

ज्ञान और क्रिया से मोक्ष होता है। किन्तु कौन सा ज्ञान और कैसी क्रिया? आत्मा शुद्ध वीतरागस्वभावी और ज्ञानस्वभाव है। उस स्वभाव को पहिचानना, सो ज्ञान है और उस ज्ञान के होने पर रागादि पर की उपेक्षा होती है एवं अशुद्धता का नाश होता है, वही क्रिया है। ऐसा ज्ञान और ऐसी क्रिया ही मोक्षरूपी सुप्रभात प्रगट करने का उपाय है। किसी शुभराग अथवा जड़ की क्रिया से मोक्ष प्रगट नहीं होता। श्री पंडित बनारसीदासजी कहते हैं कि—

विनस अनादि अशुद्धता होई शुद्धतापोख।
ता परिणति को बुध कहें ज्ञान क्रिया सों मोख॥३७॥

मैं ज्ञानस्वभाव से परिपूर्ण हूँ,-ऐसी श्रद्धा और पहिचान से ज्ञान में शुद्धता का पोषण और अनादिकालीन अशुद्धता का नाश होता है, उसी को संतजन ज्ञान और क्रिया कहते हैं। स्वभाव की प्रतीति से जो शुद्धपरिणति प्रगट हुई है, वही परिणति ज्ञान है और अशुद्धता दूर हुई, वही परिणति क्रिया है, उससे ही मोक्ष होता है। मैं ज्ञान हूँ, मैं दर्शन हूँ, मैं चारित्र हूँ-ऐसे जो विकल्प हैं, वह भी राग हैं, वह मोक्ष की क्रिया नहीं है, परन्तु मैं चैतन्यभानु हूँ, चैतन्य स्वरूप को किसी विकल्प की अपेक्षा नहीं है—ऐसे स्वभाव के आश्रय से-विकल्परहित श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र हैं, वही मोक्ष की क्रिया है।

[६] सम्यग्दर्शनरूपी अप्रतिहत सुप्रभात

मैं-आत्मा चैतन्यभानु हूँ। जैसे सूर्य को दीपक की आवश्यकता नहीं होती वैसे ही मेरे चैत्न्य प्रकाश को पर की अपेक्षा नहीं है। मेरी चैतन्यशक्ति द्वारा समस्त ज्ञात होता है। यह चैतन्यशक्ति परिपूर्ण और विकार रहित है; ऐसी यथार्थ श्रद्धा की पहिचान होने पर अनादि का मिथ्यात्वरूप अंधकार दूर हुआ कि पुनः दूसरी बार उत्पन्न नहीं होता, और जो सम्यक्त्वरूप प्रकाश प्रगट हुआ, उसका कभी नाश नहीं होता। जो सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति हुई, वह अप्रतिहत सिद्धदशा को अवश्य प्राप्त करेगा। इस समय भी जीव क्षायिक सदृश अप्रतिहत सम्यक्त्व की भनक प्रगट कर सकता है। आत्मा में सम्यग्दर्शन का जो उत्पाद हुआ है, वह नाशरहित है। इस सम्यग्दर्शन को भी सुप्रभात की उपमा है। कार्तिक सुदी एकम का दिन तो अनंतकाल में अनंतबार उदित हुआ और अस्त हो गया, परन्तु सम्यग्दर्शनरूपी प्रभात बिना जीव का कोई कल्याण नहीं हुआ। यह सम्यग्दर्शन तो ऐसा सुप्रभात है कि उदित हुआ सो उदित ही रहा, फिर कभी अस्त नहीं होता। ऐसे सम्यग्दर्शनपूर्वक ज्ञान और क्रिया से मोक्षरूपी सुप्रभात प्रगट होता है।

मैं ज्ञानस्वभाववान हूँ, चैतन्यशक्ति से परिपूर्ण हूँ, मेरी चैतन्यशक्ति किसी अन्य द्रव्य में नहीं है, मैं पर से सर्वथा भिन्न और अपने संपूर्ण गुणों से परिपूर्ण हूँ-ऐसा यथार्थतया जानकर जीव स्वतः अपने स्वभाव की ओर उन्मुख हुआ कि वहाँ पुण्य-पापरूप व्यवहार का नाश होने लगा। अपने अस्ति-स्वभाव की ओर झुका और पर्याय में विकार होने पर भी उस ओर से उदासीन हुआ; इसलिये स्वभाव की अस्ति के बल से विकार की नास्ति होने लगी। ऐसे जीव के अवश्य ही सर्व कर्मों का क्षय होता है और केवलज्ञानादि स्वचतुष्टयस्वरूप आत्मा उदय को प्राप्त होता है, वही सुप्रभात है।

[७] जो परिपूर्ण शक्ति-स्वभाव है, उसी के आश्रय से चतुष्टयरूप प्रभात उदित होता है

आत्मतत्त्व में केवलज्ञान आदि चतुष्टय की शक्ति है, वही पर्याय में प्रगट होती है। केवलज्ञान आदि बाहर से नहीं आते। आत्मस्वभाव में जो त्रिकालशक्ति है, वही स्वचतुष्टयरूप में उदय को प्राप्त होती है। पर्याय में केवलज्ञानादि प्रगट होने के पहिले ही शक्तिस्वभाव पूर्ण हैं, उसका विश्वास करे तो ज्ञान उस ओर उन्मुख हो और ज्ञान जहाँ स्वाश्रय की ओर झुका, वैसे ही उसमें असीमता आ गई और स्वभाव का संपूर्ण आश्रय करने पर अनंत केवलज्ञान प्रगट हुआ। उसीप्रकार अपना आनन्दस्वभाव परिपूर्ण है, उसकी श्रद्धा करके पूर्ण स्वाश्रय करने पर पर्याय में अनन्त परिपूर्ण आनन्द प्रगट हुआ, उसीप्रकार वीर्य-पुरुषार्थ (आत्मबल) भी स्वाश्रय से परिपूर्ण प्रगट हुआ और दर्शन को भी संपूर्ण स्वाश्रय मिलने पर वह भी पूर्ण प्रगट हुआ है, ऐसा स्वचतुष्टय ही अविभक्त आत्मकुटुंब है, उसमें कभी भेद नहीं पड़ सकता। यह अनंत चतुष्टयरूप दशा प्रगट हो, वही संपूर्ण सुप्रभात मंगल है, और परिपूर्ण शक्तिरूप स्वचतुष्टय को श्रद्धा करना, वह भी सुप्रभात मंगल है। इस समय भी में परिपूर्ण हूँ, त्रिकाल ही स्वचतुष्टय से भरा हुआ हूँ; जो ऐसा स्वभावदृष्टि से नहीं मानता, वह कभी भी स्वाश्रय नहीं करता और स्वाश्रय के बिना आत्मा में सुप्रभात प्रगट नहीं होता।

अनंतचतुष्टय कहीं बाहर से नहीं आते और न विकार के आश्रय से ही आते हैं, किन्तु स्वभाव के आश्रय से और स्वभाव से ही प्रगट होते हैं। वर्तमान अपूर्ण अवस्था में स्वचतुष्टय प्रगट न होने पर भी, उस अवस्था ने पूर्ण शक्ति की ओर उन्मुख होकर जब पूर्णता का निर्णय किया, तब वह सम्यक्निर्णय और ज्ञानरूप अवस्था स्वभाव में ढली। वह अवस्था अपने स्वभाव के आश्रय से अनंतचतुष्टयरूप परिणमित हो जाती है, आत्मा स्वत: ही उस पूर्ण पर्यायरूप परिणमित हो जाता है, इसी से वह दशा आत्मा से कभी भी भिन्न नहीं होती। पहले परिपूर्ण स्वभाव को जानकर उसका ही आश्रय करना, यही अपूर्ण से पूर्ण होने का उपाय है।

वर्तमान न्यून अवस्था है; उसका ज्ञान तो किया, किन्तु उतने में ही न अटककर अन्तर स्वभाव के सन्मुख होकर त्रिकाल पूर्ण स्वभाव का निर्णय किया, और विकार अपूर्णता तथा पर के आश्रय का निषेध किया। इससे अब पराश्रय को छोड़कर अवस्था स्वाश्रयोन्मुख हुई। पहले आत्मा पर के आश्रय से हीन और विकारी अवस्था को धारण कर रहा था, लेकिन अब स्वाश्रय से पूर्ण और शुद्ध अवस्था को धारण करता है, यह अवस्था समस्त ज्ञान-दर्शन-सुख और सम्पूर्ण आत्मबल सहित है। सन्तजन इसको ही सुप्रभात का विलास (विकास) कहते हैं।

आत्मा का त्रिकाल स्वभाव स्वयं अपने से ही पूर्ण है, विकार रहित है, उसमें पर की बिल्कुल उपेक्षा है। ऐसे अपने स्वभाव की पहिचान से जैसे-जैसे स्वभावोन्मुख हुआ, वैसे-वैसे विकार तथा पर की उपेक्षा होती गई, अर्थात् अशुद्धता दूर होती गई और शुद्धता की वृद्धि होती गई, आत्मा अपने स्वभाव में ही तन्मय हो गया। पहले अज्ञान के कारण विकारी भावों को अपना स्वरूप मानकर उनमें ही तन्मय होता था, इसी से स्वभाव और पर्याय की एकता नहीं होती थी, किन्तु भेद पड़ता था। अब भेदज्ञान के बल से विकार की उपेक्षा करके स्वभाव में तन्मय हुआ, जिससे स्वभाव और पर्याय के बीच का भेद नहीं रहा-दोनों अभेद हो गये, पर्याय स्वयं स्वभाव में मिल गयी। अब स्वभाव की ओर ढलना चाहिये—ऐसा विकल्प नहीं रहा-ऐसी अन्तरदशा को सुप्रभात कहा जाता है। ऐसा सुप्रभातस्वरूप आत्मा उदय को प्राप्त होता है, वह मंगल है, उसका आचार्यदेव वर्णन करते हैं।

[८] अचलित सुप्रभात

आत्मा अनन्तचतुष्टयरूप से सुप्रभातरूप उदय को प्राप्त होता है। वह कैसा है ? तो कहते हैं कि "अचलार्चि" अर्थात् जिसका केवलज्ञान और केवलदर्शनरूपी तेज सर्वदा अचलित-एकरूप है-ऐसा है। ऐसा अपार वीर्य-सामर्थ्य प्रगट हुआ है कि जिससे चैतन्य की ज्योति अचल रहती है, पुनः कभी भी चलायमान नहीं होती। अज्ञानदशा में तो चैतन्यज्योति प्रगट ही नहीं हुई थी, विपरीत थी, और पुण्य-पाप से दबी जाती थी। वहाँ तो सुप्रभात प्रगट ही नहीं हुआ था। सम्यक् आत्मज्ञान होने पर चैतन्यज्योति उदित हुई-सुप्रभात प्रारम्भ हुआ। परन्तु उस दशा में ज्ञान दर्शन की ज्योति पर्याय-पर्याय में बढ़ती जाती थी, किन्तु एकरूप नहीं रहती थी, इसी से वह अचल नहीं थी। परन्तु स्वरूप में संपूर्ण तन्मयता होने पर आत्मा में जो सुप्रभात उदित हुआ, उसके केवलज्ञान और केवलदर्शन की ज्योति अचल है, स्थिर है; अब वह कम्पायमान नहीं होती। "अचल" कहने से यह न समझना चाहिये कि केवलज्ञान दशा में परिणमन ही नहीं होता। केवलज्ञानदशा में उत्पाद-व्ययरूप परिणमन होने पर भी, केवलज्ञान और केवलदर्शन के प्रकाश में थोड़ी भी वृद्धि अथवा न्यूनता नहीं होती किन्तु जैसा का जैसा ही रहता है। इसलिये उसको अचल कहते हैं।

[९] भगवती स्वभाव और भगवती प्रज्ञा

भगवती चैतन्यमूर्ति स्वभाव है। पाप अथवा पुण्य परिणाम तो कुशील हैं और चैतन्यस्वभाव भगवतीरूप है। ऐसे भगवती स्वभाव को जाननेवाला जो सम्यग्ज्ञान है, वह भगवती

प्रज्ञा है। जिसने भगवती प्रज्ञा द्वारा भगवती स्वभाव का आश्रय किया, वह भगवान आत्मा स्वतः केवलज्ञान और केवलदर्शन के द्वारा अचल प्रगट हुआ है।

समयसार में श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव ने ज्ञान की भेदज्ञानरूप दशा को ''भगवती प्रज्ञा'' ऐसे पवित्र नाम से सम्बोधन किया है। आत्मा के स्वभाव और विकार को प्रथक् करने के लिये यह भगवती प्रज्ञा छैनी के समान है। सम्यग्दृष्टि आत्माओं के द्वारा बराबर पटकी जाने पर यह भगवती प्रज्ञा छैनी स्वभाव में जाकर राग का छेदन कर देती है और जो कभी अन्यरूप में परिवर्तित नहीं होती, ऐसी ज्ञान की ज्योति को प्रगट करती है-अर्थात् केवलज्ञान की प्राप्ति कराती है। केवलज्ञानरूपी सुप्रभात का कारण, भगवती प्रज्ञा (भेदविज्ञान) ही है, अतः वह भी सुप्रभात है, और मंगलरूप है।

[१०] सुप्रभात कब उदित होता है ?

आत्मा में अपना स्वकाल (पर्याय) पूर्णरूप से प्रगट हो, वही सुप्रभात है; किन्तु नूतनवर्ष के दिन सूर्य का प्रकाश उदित होता है, वह वास्तविक सुप्रभात नहीं है, वह तो अल्प समय में ही अस्त हो जाता है। चाहे कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि के बारह बजे हों, किन्तु आत्मा में मिथ्यात्वरूपी अन्धकार को भेदकर स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट करके पश्चात् स्थिरता द्वारा केवलज्ञान होने पर जो चैतन्य का जगमगाता प्रकाश उदित हुआ है, वही सुप्रभात है, वह कभी भी अस्त नहीं होता।

[११] सुप्रभात किसके प्रगट होता है :

साधकदशा मंगलरूप है

—ऐसा सुप्रभात किसके प्रगट होता है ? जिसने आत्मस्वभाव को जान लिया है—ऐसे धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि जीव के ही स्वभाव के आश्रय से सुप्रभात प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन के बिना धर्मीपना नहीं होता। सम्यग्दर्शन होने पर ही जीव धर्मात्मा होता है। सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा के निर्जरारूप दशा होती है, वही दशा पवित्र है। उससे उसके भी यद्यपि सुप्रभात का उदय तो हुआ है, किन्तु वह अपूर्णदशा होने से अभी पूर्ण सुप्रभात प्रगट नहीं हुआ, स्वकाल पूर्ण प्रगट नहीं हुआ, केवलज्ञान प्रगट नहीं हुआ, किन्तु भेदज्ञान प्रगट हुआ है। इसीलिये उसके आत्मा में धर्मकाल प्रवर्तित हो रहा है-साधकदशा विद्यमान है। पूर्ण के आश्रय से जो साधकदशा प्रारंभ हुई है, वह आगे बढ़कर सर्वत पूर्ण होनेवाली है। इसलिये यह साधकदशा मंगलरूप है।

अनन्तशक्ति का पिण्ड, चैतन्यस्वरूप जो आत्मा है, वही द्रव्य है, अपने जो असंख्य प्रदेश हैं वही स्वक्षेत्र हैं, वर्तमान में प्रवर्तित हो रही जो साधकभावरूप पर्याय, सो वह स्वकाल है, और ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि अनन्तगुण, वे उसके भाव हैं। अपने स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव से आत्मा का स्वभाव परिपूर्ण है। भगवती प्रज्ञा के द्वारा इस स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ तथा स्वभाव का वीर्य और स्वभाव के सुख का अंश प्रगट हुआ है, वह स्वकाल का प्रारंभ है, वह धर्म-काल तथा निर्जरा वा काल है। साधक-काल और धर्म की जवानी का काल है। वहाँ अभी ज्ञान-दर्शन का प्रकाश निश्चल नहीं है, किन्तु अल्पकाल में ही स्वभाव के पूर्णतया आश्रय से समस्त अशुद्धता और कर्मों का सर्वथा क्षय होने से आत्मा में स्वचतुष्टय का अचल प्रकाश प्रगट होगा।

[१२] ज्ञानियों की भावना

''लौकिक (संसारी) जन ऐसा कहते हैं कि आज नूतनवर्ष है इसलिये बोल-चाल (लोकव्यवहार) का ध्यान रखना। आज जो बुरा बोलेगा तो पूरा वर्ष ही ऐसा बीत जावेगा'' इसप्रकार अज्ञानी अपनी विकार-दृष्टि की ही वृद्धि करते हैं। ज्ञानी तो ऐसा कहते हैं कि ''संपूर्ण आत्मस्वभाव में विकार है ही नहीं'' ऐसी श्रद्धा और ज्ञान करना चाहिये। पर्याय में जो क्षणिक विकार होता है, वह मेरे स्वभाव में नहीं है; विकार रहित मेरे आत्मस्वभाव की भावना द्वारा क्षणमात्र में पर्याय का विकार दूर हो जावेगा; इसप्रकार ज्ञानीजन, स्वभाव की भावना द्वारा अशुद्धता का नाश करते हैं और आत्मा में मंगल सुप्रभात प्रगट करते हैं।

[१३] चैतन्य के प्रताप का विलास और निधान

जैसे यह भरतक्षेत्र है, वैसे ही महाविदेह नामक क्षेत्र है, वहाँ वर्तमान में श्री सीमन्धर भगवान तीर्थंकर पद पर विराजमान हैं, उनको अनंत चतुष्टयरूप सुप्रभात प्रगट है। जैसे उदित सूर्य के प्रकाश में अंधकार नहीं रह सकता, वैसे आत्मा में सुप्रभात होने पर चैतन्य सूर्य प्रगट हुआ है, उसकी ज्योति का ऐसा प्रभाव है कि उसके तेज-प्रभाव में राग अथवा दुःख आ ही नहीं सकता। चैतन्यपुंज का जो प्रताप है, उसके विकास से परिपूर्ण ऐसे निधान सहित सुप्रभात उदय को प्राप्त होता है। जड़-निधान (लक्ष्मी) में आत्मा का सुख नहीं है किन्तु आत्मा का चैतन्य-निधान से परिपूर्ण विकास हो, वही सुख है।

जो राग होता है, वह चैतन्य का विलास नहीं है, किन्तु जो केवलज्ञान होता है, वही चैतन्य

का विलास है। ''चित्पिण्ड चण्डिम विलास विकास हासः'' इस पद का विस्तार चलता है। सुप्रभातरूप उदित हुआ आत्मा कैसा है ? ज्ञानपुंज स्वभाव का जो प्रताप उसके विस्तार से परिपूर्ण है। चैतन्य भगवान का समस्त विलास उसे प्रगट हुआ है। ज्ञान की एकरूप अचल परिणति ही चैतन्य का प्रताप है। राग में अटकना चैतन्य का प्रताप नहीं है। चैतन्य की स्थिर परिणति का प्रकाश विकसित हुआ है, वही चैतन्य का अखंड निधान है। जड़-रुपया-पैसा आदि के निधान से आत्मा भिन्न ही है। आत्मा इस जड़ निधान का स्वामी नहीं है, और उनके संयोग का अल्पकाल में वियोग हो जाता है। इस स्वानुभव से प्रत्यक्ष ज्ञानस्वभाववान् भगवान आत्मा की प्रतीति और एकाग्रता होने पर जो पूर्णदशा प्रगट हुई है, वही चैतन्य का निधान है, उस निधान का आत्मा स्वामी है, वह निधान सदैव आत्मा के साथ स्थिर रहता है, अतएव वह अक्षय-निधान है।

[१४] सदा परिपूर्ण शक्ति-स्वभाव की महिमा

आत्मा की जो संपूर्ण चैतन्यदशा प्रगट हुई है, वह आत्मा के साथ सदा स्थिर रहती है। जबतक आत्मा रहता है, तबतक चैतन्यदशा होती ही रहती है, अर्थात् वह अनंतकाल अवच्छिन्नरूप से होती ही रहती है, उस दशा का कभी नाश नहीं होता, उसमें कभी अपूर्णता नहीं आती और न उसमें कभी विकार होता है।

प्रश्न—आत्मा में से इसप्रकार पूर्ण दशा प्रगट होती रहे तो पूर्ण दशा प्रगट होते-होते किसी समय आत्मा की शक्ति कम नहीं हो जायेगी ?

उत्तर—आत्मा का शक्तिस्वभाव ऐसा है कि अनंतकाल पर्यन्त परिपूर्ण दशा प्रगट होने पर भी उसमें रंचमात्र भी न्यूनता नहीं होती। जब अपूर्ण दशा प्रगट होती थी, तब शक्तिरूप अधिक भाग रहता था और जब पूर्ण दशा प्रगट हुई, तब शक्ति में कुछ कमी हो गई हो-ऐसी बात नहीं है। पूर्णदशा प्रगट हुई, वहाँ भी शक्ति पूर्ण है और अपूर्णदशा के समय भी शक्ति पूर्ण है। अपूर्णदशा हो अथवा पूर्णदशा हो किन्तु शक्ति तो पूर्ण ही रहती है, इसलिये इससे तो यह सिद्ध हुआ कि त्रिकाल शक्ति-स्वभाव निरपेक्ष है, उसको पर्याय की अपेक्षा नहीं है।

केवलज्ञानादि स्वचतुष्टयरूप पूर्ण दशा प्रगट हुई अर्थात् शक्ति की पूर्ण अवस्था प्रगट हुई, उससे क्या शक्ति न्यून हो गयी होगी ? नहीं, चैतन्य शक्ति तो परिपूर्ण ही है। सिद्धदशा अथवा निगोददशा के समय चैतन्यशक्ति समान ही है। वर्तमान अवस्था में (पर्याय) में अंतर है। चैतन्यशक्ति की श्रद्धा और आश्रय के बल से सिद्धदशा प्रगट होती है, किन्तु चैतन्यशक्ति स्वयं प्रगट

नहीं होती। चैतन्यस्वभाव को जानकर, उसके आश्रय से संपूर्ण द्रव्य-गुण-पर्याय को एकसाथ स्पष्टरूप से जानने की पर्याय की शक्ति प्रगट हुई, अर्थात् परमार्थ स्वभाव के आश्रय से व्यवहार को नष्ट करके पूर्ण दशा प्रगट हुई है, तब स्वभाव सामर्थ्य में से कुछ घट नहीं गया, वैसे ही बढ़ा भी नहीं है। जो शक्तिस्वभाव है, उसकी कभी हानि नहीं होती और न वृद्धि ही होती है, अनादि-अनंतकाल तक एकरूप अवस्थित रहता है। पर्याय में अधिक अशुद्धता हो तो उससे शक्ति में से कुछ घट नहीं जाता और पर्याय में अधिक पवित्रता हो तो शक्ति बढ़ नहीं जाती है। उसीप्रकार जब पर्याय में थोड़ी सामर्थ्य प्रगट हो, तब शक्तिरूप अधिक रहता है-ऐसा नहीं है, और जब पर्याय में अधिक सामर्थ्य प्रगट हो, तब शक्ति में न्यूनता हो जाती है-ऐसा भी नहीं है। जो निर्मलदशा प्रगट हुई है, उसका माहात्म्य सम्यग्दर्शन (सम्यक्श्रद्धा) में नहीं है, किन्तु त्रिकाली एकरूप निरपेक्ष स्वभाव का ही-परमपारिणामिकभाव का ही उसमें माहात्म्य है, उसके ही आश्रय (लक्ष्य) से निर्मलता प्रगट होती है। जब कम से कम पर्याय प्रगट हुई थी, तब भी त्रिकाल पूर्ण चैतन्यस्वभाव शक्तिरूप था, और जब पूर्ण पर्याय प्रगट हुई, तब भी त्रिकाली शक्तिस्वभाव ऐसा ही है। ऐसा ही कोई अचिन्त्य अगुरुलघुस्वभाव है। उस स्वभाव की महिमारूप यह मांगलिक होता है। अपूर्ण पर्याय हो अथवा पूर्ण पर्याय, किन्तु आत्मा शक्ति स्वभाव से सदा परिपूर्ण है; इसकी महिमा को समझना और इसका विश्वास करना, यह मांगलिक है।

द्रव्य के परिपूर्ण स्वभाव की दृष्टि से देखें तो हीन अवस्था ने कम काम किया और अधिक अवस्था ने अधिक काम किया-ऐसा नहीं है, क्योंकि प्रत्येक पर्याय के समय परिपूर्ण स्वभाव ही विद्यमान है। किस अवस्था के समय स्वभाव परिपूर्ण नहीं है ? व्यवहार से पर्याय का कार्यभेद है किन्तु निश्चय से देखो तो छोटी पर्याय ने अथवा बड़ी पर्याय ने (अपूर्ण पर्याय ने अथवा पूर्ण पर्याय ने) परिपूर्ण द्रव्य-गुण को धारण करके रखा है। इसलिये त्रिकाली द्रव्य-गुण की दृष्टि से पर्याय का कार्य-भेद स्वीकार नहीं किया है। अपूर्ण अथवा पूर्ण पर्याय-उन दोनों ने स्वभाव को ही धारण रखने का कार्य किया है, ऐसा कोई अगुरुलघु स्वभाव है। जैसे द्रव्य-गुण अगुरु-लघु स्वभावमय हैं, वैसे पर्याय में भी अगुरुलघुस्वभाव है। छोटी पर्याय और बड़ी पर्याय—ऐसे पर्यायभेद के आश्रय को छोड़कर त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से पूर्णता का जो विकास होता है, वही मंगल सुप्रभात है।

[१५] वस्तुस्वभाव की पूर्णता

प्रश्न —शुद्धात्मस्वभाव की यथार्थ श्रद्धा करके स्वाश्रय के पुरुषार्थ से जिसे सुप्रभात प्रगट

हुआ, उसके गुण-पर्याय के बीच का भेदभाव दूर हो गया और एकता हुई, उससे पर्याय में पूर्ण ज्ञान, पूर्ण सुख, पूर्ण आत्मबल प्रगट हुआ तो अब शक्ति में कुछ ज्ञानादि बाकी रहेंगे या नहीं ?

उत्तर—आत्मा त्रिकाली पदार्थ है, उसकी शक्ति सदा पूर्ण ही है। अनन्तकाल पर्यन्त ऐसी की ऐसी परिपूर्ण अवस्था प्रगट होती रहेगी, फिर भी शक्ति ऐसी की ऐसी ही-पूर्ण रहेगी। शक्ति स्वत: परिपूर्ण रहकर उसमें से त्रैकालिक अवस्थायें (पर्यायें) क्रमश: प्रगट होती हैं, ऐसे माहात्म्य से परिपूर्ण वस्तुस्वभाव है।

[१६] अक्षय चैतन्य-निधान

चैतन्यस्वरूप आत्मा की लक्ष्मी ऐसी है कि उसका चाहे जितना ही उपभोग करो किन्तु अनन्तकाल में भी उसमें से एक अंश भी नहीं घटता। अक्षय चैत्न्य-शक्ति का ऐसा निधान है। लोग कहते हैं कि बैठे-बैठे खाया करो तो बड़ा कोष भी समाप्त हो जाता है-ऐसा आत्मा में नहीं है। आत्मा का चैतन्य-निधान तो ऐसा है कि बैठा-बैठा खाया करे अर्थात् पर्याय में पूर्ण ज्ञान आनन्द का भोग करता रहे तो भी अनन्तकाल में शक्ति में से एक अंश की भी न्यूनता नहीं होती। अरे! इस चैतन्यशक्ति की प्रतीति होने पर जितने अंश में ज्ञान-आनंदरूप दशा प्रगट हुई, उस दशा का बैठे-बैठे भोग करता रहे-वर्तमान में विशेष दशा का पुरुषार्थ नहीं करे तो भी शक्ति की न्यूनता नहीं होती और न प्रगट अंश का भी नाश होता है। ऐसे अक्षय-अलौकिक अपने भंडार की प्रतीति करना ही सुप्रभात प्रगट होने का उपाय है।

[१७] महोत्सव

ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना संपूर्ण (समाप्त) होने पर, उसी भव में केवलज्ञान प्रगट होता है और यदि वह आराधना पूर्ण होने के पहले देह छूटे तो समाधिमरण करके एकावतारी होता है और दूसरे भव में उस आराधना का भाव पूर्ण करके केवलज्ञान प्राप्त करता है-यह उसका महोत्सव है। जो स्वभाव की आराधना में लग गया है, उसे पूर्णता अवश्य होगी।

[१८] आचार्यदेव आत्मा का सिद्ध पद बताते हैं

श्री रामचंद्रजी अपने उसी भव में सिद्ध होनेवाले थे, अत: जब वे बालक थे, तब उनका ऐसा भाव हुआ कि ऊपर (आकाश) से पूर्णिमा के चन्द्र को उतारकर अपने जेब में रख लूँ। इस विचार से वे चंद्रमा की ओर हाथ फैला कर रोते थे। तब प्रधान ने उनके हाथ में दर्पण देकर उसमें चंद्रमा का प्रतिबिम्ब बतलाया। वे महापुरुष हैं, इसलिये ऊपर (आकाश) से चंद्रमा को

(प्रतिबिम्बरूप से) नीचे उतारा। उसीप्रकार जिनको सिद्ध होना है, ऐसे आत्मा सिद्धपद की पुकार करते हैं, सिद्ध भगवान को पुकारते हैं कि हे सिद्ध भगवान! आप ऊपर से उतरो, मुझे सिद्धपद चाहिये है। इस पंचमकाल में सिद्धपद का विरह हो गया है।

परन्तु जैसे आकाश से चंद्रमा नीचे नहीं उतरता, वैसे सिद्धभगवान भी ऊपर से नीचे नहीं उतरते, तब तीर्थंकर भगवान के प्रधान श्री गणधर देव समाधान कराते हैं कि भाई! देख, मैं तुझे तेरे सिद्धपद को बतलाता हूँ। तू अपने ज्ञानबिम्ब में देख, उसमें तुझे सिद्ध भगवान का प्रतिबिम्ब दिखाई देगा। अपने आत्मा में और तुम्हारे आत्मा में सिद्धभगवान की स्थापना करते हैं। ऊपर से सिद्ध को उतारकर अपने भाव से आत्मा में स्थापित किया है, अर्थात् अपना आत्मा सिद्ध होकर ऊपर जानेवाला है। इसलिये हे भाई! तुम परावलंबनरूप रोने को छोड़कर अपने ज्ञानरूपी दर्पण को स्थिर करके देखो तो उसमें ही तुम्हें सिद्ध दिखाई देंगे। सिद्धदशा के विरह को भूल जाओ। तुम्हारा सिद्धपद तुम में ही है, उसको देखो, उसकी प्रतीति करो, ऐसा करने से तुम्हारी आत्मा में सिद्धदशा प्रगट हो जायेगी। यही महासुप्रभात है।

[१९] अप्रतिहत सुप्रभात

ऐसे सुप्रभात के उदय होने पर जो शुद्धपरिणति प्रगट हुई, वह स्वयं ज्ञान और आनंद से परिपूर्ण है और वह निरंतर साक्षात् उद्योतरूप (प्रकाशरूप) रहती है। यह सातिशय प्रभात है, विशिष्टप्रकार का प्रातःकाल है। त्रिकाल महिमावंत स्वभाव के आश्रय में जो सम्यग्दर्शनरूपी सुप्रभात हुआ, वह भी पुनः अस्त हो नहीं सकता तो फिर केवलज्ञानरूपी सुप्रभात में पीछे लौटने-अस्त होने की बात कहाँ से हो सकती है ?

जैसे रात्रि के अंधकार को भेदन कर सूर्य उदित होता है, वैसे सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा ने स्वभाव का पूर्ण आश्रय किया और कर्म के आश्रय को सर्वथा दूर किया, वहीं केवलज्ञारूपी सुप्रभात प्रगट हुआ, यह प्रभात परिपूर्ण ज्ञान-आनंद-दर्शन और आत्मबल सहित है।

[२०] साधक जीव चैतन्य समुद्र का मंथन कर अमृत निकालते हैं

जैसे लोकव्यवहार में कहते हैं कि किसी ने समुद्र का विलोडन (मंथन) किया और उसमें से प्रथम तो विष तथा बाद में अमृत निकला और कोई उन दोनों को पी गया। वैसे ही यहाँ सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा जीव, भेदज्ञान के बल द्वारा चैतन्यसमुद्र का मंथन करते हैं; चैतन्यस्वरूप के अनुभवरूपी अमृत का पान करके साधक जीव डोलने लगते हैं और अज्ञान तथा रागद्वेषरूपी विष को सर्वथा त्याग देते हैं, उस विष का अंशमात्र भी ग्रहण नहीं करते। यह चैतन्य समुद्र ऐसा है कि भेदज्ञान द्वारा उसका मंथन करने पर केवल अमृत ही निकलता है।

[२१] सुप्रभात में आत्मा का आनंद कैसा है ?

मिथ्यात्व-अज्ञानरूपी निद्रा और राग-द्वेष, क्रोधादि रूप अंधकार को नष्ट कर सम्यग्ज्ञान और वीतरागतामय शुद्ध परमानंद अवस्था को धारण करके शुद्धतत्त्वरूप से आत्मा स्वयं ही उदय को प्राप्त होता है, वह सुप्रभात है। वह आत्मा कैसा है ? ''आनंद सुस्थित सदाऽस्खलितैकरूपो'' अर्थात् अतीन्द्रिय स्वाभाविक सुखरूप जो अपना परिणाम है, उसमें सदा अस्खलित एकरूप स्थित है। आत्मा स्वयं ही परिपूर्ण आनंदस्वरूप हो गया है, अब कभी उसके आनंद का विरह नहीं है। जैसे आत्मा का कभी नाश नहीं होता, वैसे उसके स्वाभाविक अतीन्द्रिय आनंद का भी नाश नहीं होता। यदि पूर्णदशा का अतीन्द्रिय आनंद बाहर से आया हो तो उसका वियोग हो जावे, किन्तु अपना स्वभाव ही आनंदरूप हो गया, अर्थात् आत्मा और आनंद दोनों एकरूप हो गये हैं, इससे उनका कभी वियोग नहीं होता। वह आनंद अस्खलित है, उसमें कभी स्खलता नहीं है, भंग नहीं है; और वह एकरूप है। परलक्ष्य से आकुलता में जो आनन्द माना था, वह तो अनेक प्रकार का था, तथा साधकदशा का आनंद भी बढ़ने-घटनेरूप अनेकप्रकार का था, किन्तु पूर्णदशा का जो आकुलतारहित स्वाभाविक पूर्ण आनंद प्रगट हुआ, वह सदा एक ही प्रकार का है, एकरूप है।

[२२] आत्मा का चतुष्टयरूप सुप्रभात

ऐसी जो सुप्रभातरूप निर्मलदशा प्रगट हुई है, उसमें ही संपूर्ण आत्मा स्थित है। परिपूर्णदशा प्रगट होते ही आत्मा कृतकृत्य हो गया, जो कुछ कहा जाये, वह सब इस पर्याय में आ गया है। इस परिपूर्ण पर्याय से भिन्न कोई आत्मस्वभाव नहीं रहा। श्री अमृतचंद्राचार्य ने इस कलश में आत्मा के चतुष्टय का ही सुप्रभातरूप में वर्णन किया है। ''चित्पिंड'' इत्यादि विशेषणों से अनंत ज्ञान का प्रगट होना बताया है। ''आनंदसुस्थित'' इत्यादि विशेषणों से अनंत सुख का प्रगट होना बताया है, और ''अचलार्चि'' विशेषण से अनंतवीर्य का प्रगट होना बताया है। ऐसा अर्थ पं. जयचंदजी ने किया है। कौन ऐसे चतुष्टयस्वरूप सुप्रभात को प्राप्त करता है ? शुद्धात्मस्वभाव को जाननेरूप ज्ञान और उसमें ही रागरहित एकाग्रतारूप क्रिया, ऐसे ज्ञान-क्रिया का सुमेल जिस आत्मा में वर्तता है, वह आत्मा ही उस सुप्रभातरूप से उदय को प्राप्त होता है, और वह आत्मा सदा आनंद में ही स्थित रहता है।

[२३] आचार्यदेव के आत्मा से उठती प्रतिध्वनि!

यहाँ आचार्यदेव ऐसा बतलाते हैं कि तुम अपने शुद्धात्मस्वभाव की महिमा लाकर उसको

जानो और उसमें स्थिर हो, तो तुम्हारा आत्मा ही आनंद में ऐसा सुस्थित हो जावेगा कि पुनः कभी तुम्हें आकुलता अथवा दुःख नहीं होगा। तुम्हारा स्वभाव ही तुम्हें उपासना के योग्य है। ज्ञान और आनन्द प्रगट होने का स्थान तुम्हारा आत्मा ही है। उसको पहिचानकर उसमें एकाग्र हो तो तुम्हारा आत्मा निरंतर परिपूर्ण आनन्द में स्थिर रहेगा।

देखो, यह सुप्रभात-मंगल! यह तो आचार्य की आंतरिक प्रतिध्वनि उठी है-आत्मा में से पुकार उठी है कि हम सिद्धपद लेने को तत्पर हुये हैं, अप्रतिहतरूप से अपनी सिद्धदशा प्राप्त करने वाले हैं। (एक देह स्वर्ग में धारण करना बाकी है, उसका इन्कार करते हुये आचार्य श्री कहते हैं कि) हमारा वस्तुस्वभाव पूर्ण है, वह जायेगा कहाँ? पूर्ण स्वभाव कभी दूर होनेवाला नहीं है, और इस पूर्ण स्वभाव के जो श्रद्धा-ज्ञान प्रगट हुये हैं, वे भी कभी दूर होनेवाले नहीं हैं अर्थात् अब अप्रतिहतभाव से पूर्णता ही प्रगट होना है। इसप्रकार आचार्यदेव के अंतर में पूर्ण सुप्रभात की भावना की ही रटना हो रही है।

[२४] आत्मा का स्वकाल और महान अपूर्व मांगलिक

''प्रभात'' यह काल को बताता है। व्यवहार में दिन-रात, घण्टा-मिनिट आदि काल के भेद हैं, परन्तु इस काल के साथ आत्मा के धर्म का सम्बन्ध नहीं है। आत्मा की जो परिणति है, वह आत्मा का काल है, उसमें बाल्यकाल (अज्ञानकाल) ज्ञानकाल, चारित्रकाल, कैवल्यकाल और सिद्धकाल ऐसे भेद हैं। अज्ञानकाल और विपरीतमान्यतारूप जो पर्याय है, वह आत्मा का बाल्यकाल है, वह काल रात्रि के अंधकार जैसा है। शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा-ज्ञानरूप पर्याय, वह ज्ञान-काल है। संक्षेप में कहा जाये तो जो स्वसमय है, वह धर्म है और जो परसमय है, वह अधर्म है।

लोग मानते हैं कि दुष्काल दूर हुआ, और सुकाल हुआ, अनाज बहुत अच्छा हुआ, उससे अब सुखी होऊंगा। परन्तु हे भाई! तुमने अपने आत्मा को भोजनजीव माना है और बाह्य में सुख माना, उससे तुम्हारे अज्ञानभाव को लेकर तुम्हारे आत्मा में सदा दुष्काल ही है। तुम तुम्हारे आत्मा के स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान करो तो सुकाल प्रगट हो, अर्थात् तुममें सम्यक्प्रकार का परिणमन हो और दुष्काल अर्थात् बुरा परिणमन (अशुद्धता) दूर हो। यही तुम्हारे कल्याण का कारण है। यथार्थ श्रद्धा-ज्ञानरूपी सुकाल होने पर और स्वरूप की एकाग्रता द्वारा चैतन्य सूर्य का तपन होने पर चारित्ररूप अन्न का पाक हुआ और उसके भोजन से आत्मा पुष्ट हुआ, आत्मा में स्वकाल की पूर्णता

हुई-केवलज्ञान हुआ, यही आत्मा का यथार्थ जीवन है। परन्तु अन्नादिक से आत्मा जीवित नहीं रहता और अनाज को आत्मा खाता भी नहीं है। आत्मा तो शुद्ध चैतन्यरूप से सदा जीवित है, उसका कभी नाश नहीं है। पहले प्रारंभ में आत्मा का जीवन कैसा होता है, उसकी महिमा का वर्णन किया तथा उस स्वभाव में अगुरुलघुत्व वर्णित किया है। इस रीत से आज महान अपूर्व मांगलिक हुआ है।

[२५] साधकदशा कैसी है ?

अपने आत्मस्वभाव के आश्रय से जो साधकदशा प्रगट हुई, वह मंगलरूप है। ऐसी साधकदशा का वर्णन करते हुये नाटक समयसार में कहा है कि—

जगी शुद्ध सम्यक्कला बगी मोक्षमग जोय।
वहे कर्म चूरण करे क्रम-क्रम पूरण होय॥
जाके घट ऐसी दशा साधक ताको नाम।
जैसे जैसे दीपक धरे सो उजियारो धाम॥

बारम्बार आत्मस्वभाव की भावना से अर्थात् भेदज्ञान के अभ्यास से, शुद्धात्मस्वभाव के आश्रय से चैतन्य की निर्मलदशा प्रगट हुई, अर्थात् श्रद्धा और ज्ञानरूपी शुद्धकला प्रगट हुई, और वह वेग से मोक्षमार्ग में चलने लगी; जो परिणति अनादि से संसार की ओर चल रही थी, उसके बदले में अब साधक जीव के स्वभाव के आश्रय से मोक्ष की ओर दौड़ने लगी। अब स्वभाव के आश्रय से आगे बढ़ती-बढ़ती कर्म को, विकार को और व्यवहार को चूर्ण करती हुई क्रम-क्रम से पूर्ण होती है।

जिसके अंतर में ऐसी दशा हो गई हो, उस जीव को ही साधक जानना। स्वभाव के आश्रय से ही साधकदशा प्रारम्भ हुई है, उसके ही आश्रय से आगे बढ़ती है और उसके ही आश्रय से पूर्ण होती है। बीच में जितना व्यवहार का आश्रय आ जाता है, वह साधक नहीं किन्तु बाधक है। जहाँ दीपक हो, वहाँ प्रकाश होता है; वैसे जहाँ चैतन्य भगवान दीपकरूप में हो, वहाँ केवलज्ञानरूपी प्रकाश प्रगट होता है अर्थात् जहाँ चैतन्यस्वभाव का आश्रय है, वहाँ केवलज्ञान प्रगट होता है, किन्तु पुण्य-पाप स्वतः अंधकारस्वरूप हैं, उनके आश्रय से तो मिथ्यात्वरूपी अंधकार की उत्पत्ति होती है, किन्तु सम्यग्ज्ञान प्रकाश प्रगट नहीं होता।

साधक-धर्मात्मा जीव को चैतन्यस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन सूर्य उदित हुआ है और

मोह रात्रि दूर हो गई है। पर में ममत्व से की गई विपरीत श्रद्धा और विपरीत ज्ञानरूप जो दो परदे थे, वे फट गये और सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञानरूप दो चक्षु एकदम खुल गये। यह चक्षु खुल जाने पर अपने अचिंत्य महिमावंत भगवान आत्मा के अवाच्य स्वभाव को ठीक-ठीक (यथार्थरूप में) जान लिया। विकल्प, वाणी के अवलंबन से आत्मस्वभाव को जान नहीं सकता, किन्तु सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से ही वह ज्ञात होता है। ऐसे निज स्वभाव का यथार्थ अनुभव करने के बाद अधिक निर्मल ज्ञान प्रकाश और अधिक उद्यम जागृत होने के बाद आत्मा अपने सुखामृत-समता रस का पान विशेषरूप से करने लगा, इसप्रकार स्वभाव के आश्रय से निर्वाण (पूर्ण सुख का) मार्ग प्राप्त कर आत्मा ने निर्वाणदशा को प्राप्त कर लिया, यही सुप्रभात है। भगवान श्री महावीर प्रभु ऐसे ही उपाय से इस दशा को प्राप्त हुये, वह उनके आत्मा का सुप्रभात है और स्वयं अपने आत्मा में साधक होकर वैसी दशा प्राप्त करे, वह अपना सुप्रभात है।

[२६] जिज्ञासु का कर्तव्य

इस सुप्रभात मंगल में आत्मा-भगवान की सरस महिमावन्त बात हुई, वह जिज्ञासुओं को अन्तर में बराबर ठीक विचारनेयोग्य है, बारंबार मनन करनेयोग्य है, और अपने आत्मा में परिणमित करनेयोग्य है।

[२७] ज्ञानियों का आशीर्वाद

ज्ञानी आज के मंगल-सुप्रभात में पैसा, वस्त्र आदि वस्तु प्राप्त होने का आशीर्वाद नहीं देते; किन्तु उनके केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करने का आशीर्वाद है, और यही कर्तव्य है। आत्मा का मोक्ष करना, यही कर्तव्य है। मुक्तदशा में आत्मा में से ही पूर्ण ज्ञान, सुख और आनन्द प्रगट होता है, उनके लिये उसको कभी किसी पर की आवश्यकता नहीं पड़ती है, और न किसी आत्मा को अपने ज्ञान, सुख और आनन्द के लिये पर की आवश्यकता है। ऐसा सम्यक्-प्रभात भगवान आत्मा में प्रगट हुआ और मोहरात्रि दूर हट गई, वह महान मंगल है, यही धर्मी का अपूर्व सुप्रभात है।

पूज्य गुरुदेव की अपूर्व वाणी में झलकता हुआ
ऐसा दिव्य सुप्रभात त्रिकाल जयवन्त रहे!

पुरुषार्थ और काल

पंचमकाल कठिन है–ऐसा कहकर अज्ञानी जीव आत्मस्वभाव की प्रतीति का पुरुषार्थ ही नहीं करते। ज्ञानीजन उनसे कहते हैं कि हे भाई! क्या काल अथवा कर्म तुम्हारा हाथ पकड़ तुम्हें पुरुषार्थ करने से रोकते हैं अर्थात् तुम्हारी स्वपर्याय को काल अथवा कर्म रोकते हैं? नहीं; यह तो परद्रव्य हैं, यह तुम्हारी पर्याय को रोकने में समर्थ नहीं हैं। इसलिये हे भाई! तुम पराधीन दृष्टि छोड़, अपने स्वभाव के लक्ष्य से पुरुषार्थ करो। पुरुषार्थ द्वारा अवश्य मोक्षमार्ग की प्राप्ति हो सकती है।

आत्मा के स्वतंत्र पुरुषार्थ को स्वीकार नहीं करनेवाले जीव ऐसा मानते हैं कि ''पंचमकाल है, इसलिये जीवों के पुरुषार्थ नहीं हो सकता है'' यह पराधीनदृष्टि है। जो आत्मा के स्वतंत्र पुरुषार्थ को स्वीकार करते हैं, और स्वाधीनदृष्टि से देखनेवाले हैं, वह ऐसा जानते हैं कि ''इस समय के (वर्तमान में) जीव स्वयं ही हीन पुरुषार्थ की योग्यतावाले हैं; अतः पंचमकाल कहलाता है।'' इनमें एक की दृष्टि काल के ऊपर है, दूसरे की दृष्टि आत्म–पुरुषार्थ के ऊपर है, यह बड़ा दृष्टिभेद है।

यथार्थतया कालद्रव्य की पर्यायें तीनों कालों में सदृश ही हैं, उनमें कोई भेद नहीं है, और वह जीव की पर्याय में निमित्तमात्र है। जीव के भावानुसार कालद्रव्य की पर्याय में चौथाकाल अथवा पंचमकाल ऐसा उपचार करने में आता है। ''पंचमकाल के भरतक्षेत्र में उत्पन्न हुआ जीव मुक्ति प्राप्त नहीं करता'' इसका वास्तविक अर्थ यह है कि उन जीवों के वर्तमान स्व–पर्याय की योग्यता ही ऐसी नहीं है कि मुक्ति को प्राप्त करें और इसी से काल को उसप्रकार का (मुक्ति का) निमित्त नहीं कहते हैं। परन्तु कोई देव, महाविदेहक्षेत्र से किसी मुनि को उठाकर यहाँ पटक जाये तो वह मुनि यहाँ भी मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। यही भरतक्षेत्र और यहीं पंचमकाल होने पर भी वे जीव अपनी स्व–पर्याय की योग्यता द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। यदि जीव की अपने स्व–पर्याय की योग्यता मोक्ष प्राप्त करने की हो तो उसको यही क्षेत्र और यही काल, मोक्ष का निमित्त कहला सकता है। सिद्धांत यह है कि उपादान की स्वपर्याय की योग्यतानुसार परद्रव्य में आरोप करना, वह निमित्त कहलाता है, परन्तु परद्रव्य का अनुसरण करके उपादान की पर्याय नहीं होती। अपनी प्रत्येक समय की पर्याय की योग्यता जीव अपने उस–उस समय के पुरुषार्थ से करता है। अर्थात् योग्यता में अन्य कोई कारण नहीं है, किन्तु उस समय का पुरुषार्थ ही उस योग्यता का कारण है। जैसा पुरुषार्थ करे, उस समय वैसी योग्यता होती है।

''पर्याय'' वह तो द्रव्य का सवभाव है, प्रत्येक द्रव्य स्वत: स्वतंत्ररूप में परिणमित होता है, उस-उस समय की अपनी योग्यतानुसार पर्याय होती है। जीव अपने पुरुषार्थ से जिस समय जैसी योग्यता करता है, उस समय वैसी पर्याय होती है। कोई परद्रव्य कभी भी आत्मा की पर्याय को अपने वश नहीं करता, किन्तु आत्मा स्वयं स्वलक्ष्य को भूलकर परलक्ष्य में एकाग्र होता है, यही पराधीनता है। अज्ञानी स्वपर्याय को नहीं देखते और परद्रव्य के दोष निकालते हैं। ''समस्त परद्रव्य तो अपने अपने भाव में थे परन्तु स्वयं किसलिये स्वभाव की एकाग्रता से विमुख हुआ''—ऐसा ज्ञानी कहते हैं। परद्रव्य के कारण से दोष नहीं हुआ है। रास्ते में कुंआ हो और उसमें कोई मनुष्य गिर जाय तो किसका दोष? क्या कुंआ बीव में आया, इसलिये वह गिरा? नहीं, वह स्वत: अंधा होकर (असावधानी से) उसमें गिरा। उसको देखकर सावधानी से चलना चाहिये था, कुंआ तो अपने स्थान पर ही विद्यमान था। कुएँ ने मनुष्य को बलात् खींचकर अपने में नहीं गिराया है। यदि मनुष्य स्वत: कुएँ से प्रथक् मार्ग से चले तो कुंआ उसको जबरदस्ती से अपनी तरफ नहीं खींच लाता। वैसे काल अथवा कर्म आदि सब परद्रव्य स्वयं अपने-अपने कारण से इस जीव से प्रथक्रूप में स्थित हैं, वे जीव के पुरुषार्थ को बलात् रोकते नहीं हैं; जीव अपने विपरीत पुरुषार्थ द्वारा अपने उपयोग को उस ओर ले जाकर विकारी होता है। सम्यक् पुरुषार्थ से उस ओर के उपयोग को हटाकर अपने स्वभाव की ओर परिणमन करे तो काल अथवा कर्म आदि परद्रव्य उसका कंधा हिलाकर इन्कार नहीं करते। इसलिये प्रथम तो जीवों को अपने चैतन्यस्वभाव को पर से भिन्न जानकर, चैतन्य का जो उपयोग पर की ओर एकाग्र हो रहा है, उस उपयोग को अपने आत्मा की एकाग्र करना है, अर्थात् मात्र अपना उपयोग बदलना है, यही मुक्ति का उपाय है। ''उपयोग को स्व की ओर एकाग्र करना'' उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों एकत्रित हो जाते हैं।

(श्री समयसार-मोक्ष अधिकार के व्याख्यानों में से)

''परद्रव्य का मैं कर्ता हूँ'' यही अज्ञान है!

(श्री समयसार-कलश टीका पृष्ठ ७० से ७३ के आधार पर)

जिसको ऐसा निश्चय रहता है कि ''यह समस्त आत्मा ही राग-द्वेषरूप हो गया है'' वह जीव अज्ञानी कहा जाता है। संपूर्ण आत्मा को राग-द्वेषरूप समझना ही मिथ्यात्व है, और वास्तविक में वही संसार का मूल है। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी ऐसा समझता है कि मेरा आत्मा, राग-द्वेषमय नहीं हो गया है; आत्मा तो रागरहित मात्र ज्ञान-दर्शनस्वरूप है। मात्र वर्तमान पर्याय में राग-द्वेषरूप परिणमित हुआ है।

जड़कर्म और आत्मा-ये दोनों एकत्रित होकर रागादिरूप में परिणमित नहीं होते, चेतन स्वयं रागादिभावरूप परिणमित होता है। रागादिभाव के समय भी चेतन और कर्म का-इन दोनों का स्वतंत्र प्रथक्-प्रथक् परिणमन स्वयं अपने-अपने रूप में है। दोनों ने एकरूप होकर कभी एक परिणमन किया नहीं और हो भी नहीं सकता है। यह दो द्रव्य हैं और उनका परिणमन भी दो प्रकार का है, और सदा दो प्रकार के ही रहेंगे, कभी उन दोनों का एक परिणमन नहीं होता। इस सम्बन्धी दोहा निम्नानुसार है:—

एक कर्म कर्तव्यता करे न कर्ता दोय।
दुधा द्रव्यसत्ता सु तो एक भाव क्यों होय?

अर्थ—दो द्रव्य होकर एक काम नहीं करते, कारण कि प्रत्येक द्रव्य की सत्ता ही भिन्न है, वे एक भाव कैसे हो सकते हैं ?

यहाँ कोई अज्ञानी प्रश्न करेगा कि द्रव्य में तो अनंत शक्ति है, उनमें से एक शक्ति ऐसी भी हो कि एक द्रव्य, दो द्रव्यों के परिणाम को करे, जैसे जीवद्रव्य अपने अशुद्ध चेतनारूप राग-द्वेष-मोह परिणामों को अपने में करता है, वैसे ज्ञानावरणादि कर्मपिंड को भी वह करे ? कारण कि जीव की अनंतशक्ति है। इसका उत्तर इसप्रकार है-''द्रव्य में अनंतशक्ति है'' यह बात सत्य है, किन्तु द्रव्य की अनंतशक्तियों में से ऐसी तो कोई भी शक्ति नहीं है कि जैसे द्रव्य अपने भाव में रहकर उसको करता है, वैसे वह परद्रव्य के भाव में रहकर उसको भी करे। परद्रव्य का कुछ कर सके—ऐसे शक्ति वस्तुस्वभाव में ही नहीं है। जो अनंतशक्ति है, वह अपने में (स्वयं में) काम करती है, पर में वह कुछ नहीं करती। इस संबन्ध में श्री समयसार का कलश निम्नोक्त है:—

(आर्या)

नैकस्य हि कर्तारौ द्वौ स्तो द्वे कर्मणी न चैकस्य,
नैकस्य च क्रिये द्वे एकमनेकं यतो न स्यात्॥५४॥

१— हि एकस्य द्वौ कर्तारौ न-अर्थात् वास्तव में एक परिणाम के दो कर्ता नहीं होते। भावार्थ यह है कि अशुद्ध चेतनारूप राग-द्वेष-मोह परिणामों का जैसे उनमें रहकर जीव कर्ता है, वैसे पुद्गलद्रव्य भी उन राग-द्वेष-मोह परिणामों का कर्ता है-ऐसा नहीं है। जीवद्रव्य ही अपने राग-द्वेष-मोह परिणामों का कर्ता है, पुद्गलद्रव्य उनका कर्ता नहीं है।

२—एकस्य द्वे कर्मणी नस्त:-अर्थात् एक द्रव्य के दो काम नहीं होते। भावार्थ यह है कि जैसे राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध चेतना परिणामों का उनमें रहकर जीव कर्ता है, वैसे ज्ञानावरणादि अचेतन कर्मों का भी जीव कर्ता है-ऐसा नहीं है। जीव अपने परिणामों का ही कर्ता है, अचेतन परिणामरूप कर्मों का कर्ता नहीं है।

३—च एकस्य द्वे क्रिये न-अर्थात् एक द्रव्य की दो क्रियायें भी नहीं होती। भावार्थ यह है कि जैसे जीवद्रव्य चेतनपरिणतिरूप परिणमित होता है, वैसे अचेतनपरिणतिरूप भी परिणमित होता है-ऐसा नहीं है। जीव, चेतनक्रिया करता है, अचेतनक्रिया नहीं करता।

४—यत: एकं अनेकं न स्यात्-कारण कि जो एक द्रव्य है, वह अनेकरूप नहीं होता। भावार्थ यह है कि जीव तो एक चेतनद्रव्यरूप है। यदि जीवद्रव्य अनेकरूप हो (अर्थात् वह जड़द्रव्यरूप भी हो और चेतन-द्रव्यरूप भी हो) तो, ज्ञानावरणादि कर्मों का भी वह कर्ता होगा और अपने राग-द्वेष-मोहरूप अशुद्ध चेतनपरिणामों का भी कर्ता होगा। परन्तु ऐसा नहीं है। जीवद्रव्य तो सदा एक चेतनरूप ही है, और उस-उस समय के अपने चेतन परिणामों का वह कर्ता है, जीव कभी अचेतन कर्मों को नहीं करता—ऐसा वस्तु-स्वरूप है।

यहाँ यह बताया है कि चेतन पदार्थ का काम चेतनरूप होता है और अचेतन पदार्थ का अचेतनरूप होता है। चेतनद्रव्य, अचेतन पदार्थ की परिणति को नहीं करता, और न चेतनद्रव्य की परिणति को अचेतन पदार्थ करता है। जिसप्रकार चेतन और अचेतन ऐसी दो परिणतियों को एक चेतनद्रव्य नहीं करता; उसी प्रकार अचेतन और चेतन ऐसी दो परिणतियों को एक अचेतन द्रव्य नहीं करता है। वैसे ही चेतन और अचेतन ये दो पदार्थ मिलकर भी कोई काम नहीं करते। जिस द्रव्य के जो परिणाम होते हैं, वे उसमें ही रहते हैं। द्रव्य का कार्य द्रव्य से प्रथक् नहीं होता। शुद्धदृष्टि से यह जीव अपनी शुद्ध वीतरागी परिणति को ही करता है। अशुद्धदृष्टि से यह जीव, राग-द्वेष-

मोहरूप अपनी विभाव परिणति को करता है। परन्तु जीव, ज्ञानावरणादि कर्म को अथवा पुद्गलद्रव्य की किसी भी परिणति को किसी प्रकार नहीं करता।

अपनी वैभाविकशक्ति की योग्यता से राग-द्वेषरूप परिणमित हो—ऐसी शक्ति तो जीव में है, परन्तु परद्रव्यों को परिणमित करा दे—ऐसी कोई शक्ति जीव में नहीं है। यद्यपि राग-द्वेष-मोहरूप परिणाम अशुद्ध हैं, वे जीव का मूलस्वरूप नहीं हैं, तथापि अज्ञानभाव से जीव उन रागादि अशुद्ध भावों का कर्ता तो भले हो परन्तु जड़ कर्मों को शरीर की क्रिया को अथवा पुद्गल की किसी भी क्रिया को तो जीव, अज्ञानभाव से भी नहीं कर सकता। इस बात को यहाँ दृढ़ किया है।

अनादि से आत्मा को परद्रव्य के कर्ता-कर्मपन का अज्ञान है, यदि वह अज्ञान शुद्धस्वरूप के अनुभव से एकबार भी नाश को प्राप्त होवे तो पुनः नहीं आता ऐसा अब कलश में कहते हैं:—

आसंसारत एव धावति परं कुर्वेऽहमित्युच्चकै-
र्दर्वारं ननु मोहिनामिह महाहंकाररूपं तमः।
तद्भूतार्थपरिग्रहेण विलयं यद्येकवार व्रजेत्
तत्किंज्ञानघनस्यं बंधनमहो भूयो भवेदात्मनः ॥५५॥

''ज्ञानावरणादि कर्म को अथवा परद्रव्य को मैं करता हूँ''-ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव को अत्यन्त दुर्निवार मिथ्यात्वरूप महा अंधकार अनादि संसार से अखंड-संतानरूप से चला आ रहा है; देव हो अथवा मनुष्य, तिर्यंच हो अथवा नारक, वे सब कर्म की पर्यायों में अपनेपन की बुद्धि करते हैं, ऐसा महा अहंकाररूप वह मिथ्यात्व है। श्री आचार्यदेव कहते हैं कि यदि भूतार्थ को बराबर ग्रहण करने से (अर्थात् पर से पृथक् अपने शुद्धस्वरूप के अनुभव से) वह मिथ्यात्व एकबार भी नष्ट हो जाये तो, अहो! ज्ञानघन-आत्मा को पुनः बंधन कैसे हो सकता है?

यहाँ यह बताया है कि इस जीव को ''मैं परद्रव्य का कर्ता हूँ''-ऐसी बुद्धि अनादिकाल से हो रही है। अपनी स्वद्रव्य की परिणति को भूलकर पर की ही परिणति का मैं कर्ता हूँ-ऐसी मान्यता ही घोर मिथ्यात्व है। यदि किसी भी प्रकार शुद्धात्मद्रव्य के अभ्यास से एकबार भी सम्यक्त्व प्रगट कर ले और वह मिथ्यात्व छूट जाय तो पुनः कभी अज्ञानभाव नहीं हो, कभी भी पर में अहंबुद्धि नहीं करे। अज्ञान दूर हो गया, तब फिर संसार का बंधन किसप्रकार रह सकता है? नहीं रहता है, अर्थात् मोक्ष ही होता है-ऐसा जानना चाहिये। इसका उपाय शुद्धात्मस्वरूप के अनुभव का अभ्यास ही है। श्री तत्त्वज्ञानतरंगिणी में कहा है कि शुद्ध चैतन्यस्वरूप मेरे आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी भी चेतन, अथवा अचेतन पदार्थ को किसी रीति से, किसी काल में अथवा किसी क्षेत्र में मैं अपनी चेतना से स्पर्श भी नहीं करता हूँ। (समयसार कलश टीका, पृष्ठ ७० से ७३)

ATMADHARMA With the permission of the Baroda Govt. order No. 30-24 date 31-10-44 Regd. No. B. 4875

स्वतः भव्य है या अभव्य ? इसका निःसंदेह निर्णय हो सकता है ?

श्रीमद् राजचंद्रजी लिखते हैं कि:—

''जो साधु तुम्हारा अनुसरण करते हों, उन्हें समय-समय पर बतलाते रहना चाहिये कि 'धर्म' उसका नाम हो सकता है जो धर्मरूप होकर परिणमन करे। 'ज्ञान' उसका नाम हो सकता है जो ज्ञानरूप होकर परिणमन करे। हम लोग व्रत, स्वाध्याय आदि जो भी क्रियायें करते हैं, वे सब मिथ्या हैं-यदि मेरे कहने का तुम लोग ऐसा तात्पर्य नहीं समझो तो मैं तुमसे कुछ करना चाहता हूँ—ऐसा कहकर उन्होंने बतलाया है कि यह जो कुछ भी हम कर रहे हैं, उसमें कोई ऐसी बात रह जाती है कि जिससे 'धर्म' और 'ज्ञान' हमें अपने रूप में परिणमित नहीं करता, और कषाय एवं मिथ्यात्व (संदेह) की मंदता नहीं होती, इसलिये हमें जीव के कल्याण का बारंबार विचार करनेयोग्य है, और उन विचारों से हमें कुछ न कुछ फल अवश्य ही मिलेगा। हम सबकुछ जानने का प्रयत्न करते हैं किन्तु हमारा 'संदेह' कैसे दूर हो ? यह जानने का प्रयत्न नहीं करते। जबतक यह नहीं करेंगे, तबतक संदेह कैसे दूर होगा ? और जबतक संदेह रहेगा, तबतक ज्ञान भी नहीं होता, इसलिये संदेह को टालने का प्रयत्न करना चाहिये। वह संदेह यह है कि-यह जीव भव्य है अथवा अभव्य ? मिथ्यादृष्टि है अथवा सम्यग्दृष्टि ? सुलभ बोधी है या दुर्लभ बोधी है ? अल्प संसारी है अथवा अनंत संसारी ? यह सब हमें ज्ञात हो, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये।

उपरोक्त कथन से स्पष्ट ज्ञान होता है कि मैं भव्य हूँ अथवा अभव्य इत्यादि प्रकार का निर्णय प्रत्येक मनुष्य कर सकता है। छद्मस्थ जीव अपने भव्य-अभव्यपने का निर्णय नहीं कर सकते-यह मान्यता महा मिथ्यात्व है। 'मैं भव्य हूँ'—ऐसे निर्णय के बिना तथा 'मैं अभव्य हूँ'—ऐसा संदेह दूर किये बिना जीव को धर्म हो ही नहीं सकता।

''मैं अभव्य हूँ अर्थात् अनंतानंतकाल में भी मेरी मुक्ति नहीं'' जिनके ऐसा संदेह हो गया है, वे जीव भवरहित होने का पुरुषार्थ किसी भी प्रकार नहीं कर सकते, और वे भवरहित पुरुषों की वाणी का आशय भी नहीं समझ सकते। ''मैं भव्य ही हूँ, निकट भव्य हूँ, अभव्य नहीं'' प्रत्येक धर्मात्मा को ऐसा निःशंक निर्णय होता ही है। जिसको इस सम्बन्ध में निःशंक निर्णय न हो, वह जीव, धर्म के सन्मुख नहीं हो सकता।

मुद्रक : चुनीलाल माणेकचंद रवाणी, शिष्ट साहित्य मुद्रणालय, दास कुंज, मोटा आंकडिया ता.११-१०-४८
प्रकाशक : जमनादास माणेकचंद रवाणी, आत्मधर्म कार्यालय, मोटा आंकडिया, काठियावाड